नियमसार, ११० गाथा। यहाँ तक आया है। **नित्यनिगोद के जीवों को भी....**क्या कहते हैं ? यह आत्मा का जो पंचम परमभाव वस्तुरूप से-सत्तारूप से-अस्तित्वरूप से जो सत् है, वह **नित्यनिगोद के जीवों को भी शुद्धनिश्चयनय से वह परमभाव 'अभव्यत्व-पारिणामिक' ऐसे नाम सहित नहीं है...** अर्थात् उनका परिणाम न परिणम सके—शुद्धस्वभाव को न परिणम सके—ऐसा उसे नहीं है। अभव्य जीव को वस्तु है, परन्तु उसे आश्रय नहीं; इसलिए वह उसके योग्य नहीं। ऐसे यहाँ निगोद के जीव को योग्य नहीं, ऐसा नहीं—ऐसा कहते हैं। निगोद के जीव में भी... आहाहा! यह लहसुन और प्याज का एक राई जितना टुकड़ा लो तो (उसमें) असंख्य तो शरीर है और एक-एक जीव को तैजस, कार्मण शरीर है। ऐसे एक अंगुल के असंख्य भाग में अनन्त आत्मायें (रहते हैं), परन्तु उस आत्मा का जो सत्व-दल है, वह तो नित्य निगोद के जीव को भी शुद्ध ही है। आहाहा!

नित्यनिगोद के जीवों को भी... ऐसा। प्रगट हुआ है, उसे तो ठीक परन्तु **नित्यनिगोद के जीवों को भी शुद्धनिश्चयनय से वह परमभाव 'अभव्यत्व-पारिणामिक' ऐसे नाम सहित नहीं है...** शुद्ध है। आहाहा! यह आनन्द और परमात्मस्वरूप से शुद्ध ही है और उस परमात्मस्वरूप से परिणमन सकता है, ऐसा है। नित्य निगोद के जीव में भी ऐसी शक्ति है। वह अभव्य परिणम नहीं सकता, वैसा यह नहीं है—ऐसा कहते हैं। आहाहा!

वस्तु है न ? अन्तर में चैतन्य सत् का सत्त्व, ऐसा तत्त्व जो है, वह तो ज्ञायकपने का अनन्त गुण का पूर्ण रूप है। वह स्वयं स्वत:पने स्वयं अन्तर में स्वभावरूप से परिणम सकने को नित्य निगोद के जीव में भी ताकत है। आहाहा! भले इस समय न कर सके, परन्तु उसमें ताकत है। नित्य निगोद का जीव (वहाँ से) निकलकर भी मनुष्य होकर परम पारिणामिकस्वभाव का अनुभव करके अन्तर्मुहूर्त में मुक्ति को पाये। आहाहा!

'अभव्यत्वपारिणामिक' ऐसे नाम सहित नहीं है... आहाहा! इससे ऐसा कहा, अभव्य जीव का तो जीव शुद्धरूप वस्तु है, परन्तु वह परिणमने के योग्य नहीं है; पूर्ण जैसा स्वरूप है, वैसा होने के योग्य वह नहीं है, ऐसा नित्य निगोद में नहीं है। आहाहा! भले नित्य निगोद में (से) अभी तक त्रस हुआ नहीं, परन्तु उस जीव में ऐसी ताकत है कि परिणम

सके-ऐसी ताकत है। वस्तु तो है, परन्तु वह शुद्ध परिणम सके-ऐसी योग्यतावाले निगोद के-नित्य निगोद के जीव भी हैं। आहाहा! है?

शुद्धरूप से ही है। आहाहा! जिसका सत्त्व चैतन्य, वह शुद्ध ही है। भले नित्य निगोद में हो, त्रसपना पाया भी न हो, परन्तु उसकी वस्तु तो शुद्ध पवित्र आनन्दकन्द और परिणमने के योग्य है। आहाहा! वहाँ से निकलकर अन्तर्मुहूर्त में मनुष्य हो, निगोद से (निकल कर) भले एकाध भव करे; फिर मनुष्य हो। वह आठ वर्ष में शुद्धस्वरूप का परिणमन करके मुक्ति भी पाये। आहाहा! ऐसी उसमें ताकत है। नित्य निगोद, जिसमें त्रसपना अभी पाया नहीं-ऐसे जीवों में भी ऐसी ताकत है कि वह मनुष्य,... एकाधभव बीच में करे और मनुष्य होवे तो आठ वर्ष में... आहाहा! निगोद का अनादि-सान्त भाव करके और सिद्ध का सादि-अनन्त भाव प्रगट कर सकता है। आहाहा!

वहाँ भाषा काम नहीं करे, वहाँ भाव को सामर्थ्य की बलिहारी है। यह बात अन्दर बैठनी (चाहिए)। आहाहा! ज्ञान में यह बात आये बिना बैठती नहीं। यहाँ तो निगोद के जीव की ताकत ऐसी है, इतनी बात करते हैं, परन्तु यह (बात) बैठे किसे? जिसे यह चैतन्यमूर्ति भगवान परमेश्वरस्वरूप से बिराजमान है, उसकी अन्दर की दृष्टि हुई, सत् के सत्त्व का अनुभव किया, अनुभव में आया कि यह तो पूर्ण आनन्द का घन है, उस जीव को परिणमने की जैसे ताकत है; वैसे निगोद के जीव को भी उस प्रकार से परिणमने की ताकत है। आहाहा!

जैसे... (कहकर) दृष्टान्त देते हैं। ये पंचम काल के मुनि, पंचम काल के जीव को सम्बोधन करते हैं। आहाहा! इतनी बड़ी बात पंचम काल में की जा सके या नहीं? की जा सके क्या, कर सकता है। पंचम काल का जीव भी निगोद से निकलकर अन्तर्मुहूर्त में आठ वर्ष में अन्तर्मुहूर्त में आत्मज्ञान पाकर सर्वज्ञ हो सकता है। भरोसा चाहिए न! विश्वास से जहाज चलते हैं न?

विश्वास, रुचि-दृष्टि परिणमन में इसे बैठना चाहिए कि यह तो प्रभु पूरा शुद्ध सत्व है, पूर्ण आनन्द है। उसमें अशुद्धता तो नहीं, परन्तु अपूर्णता नहीं! अशुद्धता तो नहीं, परन्तु अपूर्णता भी नहीं! ऐसे निगोद के-नित्य निगोद के जीव हैं। आहाहा! तो फिर तू वहाँ से निकलकर यहाँ आया है न! ऐसा कहते हैं। आहा...! तू यहाँ तक आया। मोक्षमार्गप्रकाशक

में तो ऐसा कहा है कि 'सब अवसर आ गया है।' आया है न? मनुष्यपना पाया, जैनवाणी पंचम परमभाव की तुझे कान में पड़ी और क्रमबद्ध (अर्थात्) द्रव्य का पर्यायस्वभाव क्रमबद्ध है, उसका निर्णय होने का-ज्ञायकभाव की ओर का आश्रय होने की योग्यता तुझमें है। यह पंचम काल इसे कहीं रोकता नहीं है। आहाहा!

जिस प्रकार मेरु के अधोभाग में स्थित सुवर्णराशि को भी... मेरुपर्वत के नीचे अकेला सोना भरा हुआ है। आहाहा! लाख योजन का मेरुपर्वत है, उसके नीचे अनादि से अकेला सोना भरा है। मेरुपर्वत का जो अन्दर निचला भाग (है वह) अकेला सोने से भरा है। अनादि से, हों! आहा! उस मेरुपर्वत के अधोभाग में रही हुई सुवर्णराशि (अर्थात्) शुद्ध सुवर्ण के ढेर को **भी सुवर्णपना है,...** उसे भी **सुवर्णपना है, उसी प्रकार अभव्यों को भी परमस्वभावपना है;...** अभव्य को परमस्वभावपना तो है। **वह वस्तुनिष्ठ है,...** उस वस्तु में रही हुई ही उसकी योग्यता है। मेरुपर्वत का सोना बाहर लाकर व्यापार में काम आवे या उपयोग में काम आवे—ऐसा नहीं है। नीचे सोने का ढेर पड़ा है। मेरुपर्वत लाख योजन का ऊँचा है, उसके प्रमाण उसकी चौड़ाई कितनी? वहाँ तो नीचे अकेला सोना भरा है। आहाहा!

श्रोता को ऐसा कहते हैं कि तू परिणम सकता है। अभव्य जीव जैसा तू नहीं है। आहाहा! वे तो ऐसे कोई अल्प जीव ही होते हैं। तू यहाँ आया, यहाँ सुनता है, सुनने आया। यह कोई एकेन्द्रिय को नहीं कहते। हैं? आहाहा! भले अप्रतिबुद्ध हो, परन्तु है तो भगवान! और भगवान होने के-परिणमन के योग्य ही है! भगवानपना परिणमन के योग्य ही है! आहाहा! (अभव्य को भी) भगवानपना है, परन्तु भगवानपना परिणमने के योग्य नहीं। अन्तर डालकर बात करते हैं।

मैं तुझे सुनाता हूँ, वह तुझे मैं ऐसा कहता हूँ कि नित्य निगोद के जीव भी अभव्य जैसे नहीं हैं। आहाहा! तो प्रभु! तू तो यहाँ आया, यहाँ तक आया, सुना, वीतरागस्वरूप की बात तुझे कान में पड़ी—वाणी तुझे कान में पड़ी तो कहते हैं कि तेरा आत्मा शुद्धरूप परिणमने के योग्य है! आहाहा! परमात्मा होने के योग्य है! आहा! परमात्मपना है, ऐसा परमात्मपना प्रतीति में आवे-ऐसा तू है। आहाहा!

मुमुक्षु : मंगल आशीर्वाद दिया।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसी बात ही की है, अन्य बात ही नहीं। ये पंचम काल के साधु हैं और पंचम काल के रोता को सुनाते हैं। आहा! तू निरुत्साहित न हो। अभव्य जैसे परिणम नहीं सकता, वैसे तू नहीं परिणम सकता-ऐसा है नहीं। तू यहाँ तक आया, वह सुन! आहाहा! ऐसा कहते हैं। मुनिराज ऐसा कहते हैं। भगवान को अनुसरणकर मुनिराज कहते हैं, भगवान की वाणी भी ऐसा कहती हैं। उसे अनुसरण कर वे स्वयं कहते हैं। अनुसरकर परिणमे हैं, अनुसरकर तू परिणमेगा-ऐसा तू है। आहाहा! पंचम काल और ऐसा हल्का / कम पुण्य और हलकी जगह अवतार हो गया.... (ऐसा लेना) नहीं। आहाहा!

पूर्णानन्द का नाथ प्रभु, अतीन्द्रिय आनन्द का रसकन्द अतीन्द्रिय आनन्दरूप से परिणम सके—ऐसा तू है। (समयसार की) ३८ वीं गाथा में तो यह कहा है न? (अप्रतिबुद्ध जीव को) गुरु ने बारम्बार कहा, वहाँ तो ऐसा लिखा है कि 'निरन्तर समझाने पर।' निरनतर समझाने को तो गुरु कहाँ निवृत थे? (इसका अर्थ) निरन्तर घोलन करने पर। दर्शन-ज्ञान-चारित्र को (प्राप्त हुआ) और वह भी प्राप्त हुआ कैसा?-न गिरे ऐसा। अप्रतिबुद्ध था, वह भी प्रतिबुद्ध पाया और (मोह का अंकुर अब उत्पन्न होनेवाला) है ही नहीं। आहाहा! (यह) पंचम काल के प्राणी की पुकार है। कहनेवाले की तो है, परन्तु श्रोता है, जिसने सुना है, उसकी यह पुकार है। आहाहा! समझ में आया? कहनेवाले तो कहते हैं, परन्तु तू वैसा हो सके ऐसा है। काल की राह और बाट देखनी नहीं है। आहाहा! ऐसा तुझे भगवान पूर्णाननद का नाथ कान में पड़ा प्रभु! वह परमात्मा होने के योग्य ही है। अभव्य के जैसा तू नहीं है। आहाहा! इतना अधिक कह दिया-अभव्य जैसा तू नहीं है। वे नित्य निगोद के जीव भी अभव्य जैसे नहीं हैं। आहाहा!

'तारी नजर के आलसे रे नयणे न निरख्या हरि...' हरि—ऐसा जो अज्ञान और राग-द्वेष हरनेवाला प्रभु। तेरी नजर के आलस से निधान रह गया। निधान पड़ा ही है और वह परिणमने के योग्य तू है। आहाहा! गजब बात करते हैं! दिगम्बर सन्तों की बात! श्रीमद् कहते हैं—'दिगम्बर के तीव्र वचनों के कारण रहस्य कुछ समझा जा सकता है। श्वेताम्बर की शिथिलता के कारण रस शिथिल होता गया।' उनके रस की ऐसी पुकार है—दिगम्बर सन्तों की पुकार है। आहाहा! तू परिणमने के योग्य है—ऐसा कहते हैं। आहाहा! प्रभु! तुम सर्वा नहीं न? हम अभव्य हैं या नहीं—यह तुम्हें खबर नहीं (और) तुम एकदम ऐसी

पुकार करते हो ? आहाहा ! योग्य हो ! परिणमने के योग्य हो ! परिणम सकते हो ! आहाहा ! है ?

अभव्य जीव परमस्वभाव का आश्रय करने के लिये अयोग्य अयोग्य हैं। सुदृष्टियों को... आहाहा ! जिसने दृश्टि में गुलांट खायी है, पर्यायदृष्टि छूटी और क्रमबद्ध में निर्णय करने पर ज्ञायक का निर्णय का अनुभव हुआ है। क्रमबद्ध का निर्णय करन इस ज्ञायकभाव का अनुभव हुआ है। आहाहा ! ऐसे **सुदृष्टियों को—अति आसन्नभव्य जीवों को...** लाईन करके सुदृष्टि की व्याख्या की है। सुदृष्टि अर्थात् अति आसन्न भव्य जीव। उसे अल्पकाल में मुक्ति है। आहाहा ! मोक्ष तो उसे अब (निकट में ही) दिखता है—ऐसा कहते हैं। उसे मोक्ष तो दिखता है, अल्प काल में मोक्ष होगा -ऐसी पुकार है।

श्रीमद् ने कहा है न ? वे तो गृहस्थाश्रम में थे, लाखों का व्यापार था। अन्तर्दृष्टि में से आया है। 'अशेष कर्मनो भोग छे, भोगवओ अवशेष रे।' अभी एक राग बाकी लगता है। 'पण तेथी देह एक धारिने जाशुं स्वरूप स्वदेश।' हम एकाध देह धारण करके हमारे देश में चले जायेंगे। राग के परदेश में अब हम नहीं रहेंगे। आहाहा ! राग के परदेश में (अब नहीं रहेंगे) यह वाणी आयी न ? बहिन में (बहिनश्री चम्पाबेन के वचनामृत में) भी आया और यह (आया)। 'जाशुं स्वरूप स्वदेश' इसका अर्थ आया कि पुण्य-पाप है वह परदेश है, विभाव है, स्वभाव नहीं; इसका-आत्मा का वह परिवार नहीं। आहाहा ! आत्मा का परिवार तो आनन्द, शान्ति, स्वच्छता और प्रभुता और पूर्णता, वह प्रभु की सामग्री अथवा परिवार है। एकाध देह धारण करके उस स्वदेश में (जाकर) हम पूर्ण होनेवाले हैं। आहाहा ! समझ में आया ? सर्वज्ञ को मिले नहीं। कुन्दकुन्दाचार्य को सर्वज्ञ को मिले हैं।

इस आत्मा का सर्वज्ञस्वभाव है। सर्वज्ञस्वरूप ही आत्मा है। जिसे आत्मज्ञ कहा, आत्मा का सर्वज्ञस्वभाव है, वह आत्मज्ञ है। सर्व को जानना, वह तो अपेक्षित बात हुई। आहाहा ! आत्मा की पर्याय में पूर्णरूप से जानना, वह आत्मज्ञपना वही सर्वज्ञपना है-ऐसा अल्पकाल में सर्वज्ञपना होगा, वह हमारा स्वदेश है, उसमें हम जायेंगे; परदेश में से हटकर जायेंगे, हमारा वह वतन है। आहाहा ! अतीन्द्रिय आनन्द का नाथ, वह हमारा वतन है, वह हमारा स्वदेश है। वह हमें रहने का स्थान है। आहाहा ! 'जाशुं स्वरूप स्वदेश।'

मुनिराज ऐसा कहते हैं, तू अल्प काल में मुक्त होगा, (स्वदेश में) जायेगा - ऐसा तू है। आहाहा ! अभव्य (जीवराशि) जैसा नहीं—ऐसा कहा न ? निगोद के जीव को भी,

ऐसा कहा परन्तु सुनानेवाले को तो पंचेन्द्रियपना है। आहाहा! सुननेवाले को तो पंचेन्द्रियपना है। आहाहा! हीनता का आश्रय न कर, हीन रहूँगा—ऐसा न मान; पूर्ण हो जाऊँगा—ऐसा मान। आहाहा! (तू) पूर्ण है और पूर्ण (होने के योग्य है); अभव्य पूर्ण है, परन्तु पूर्ण हो सकने के योग्य नहीं है परन्तु तुझे कहते हैं कि तू पूर्ण है और पूर्ण हो सकने के योग्य है। आहाहा! ऐसी बात है।

मुनि के हृदयों में यह पुकार है। स्वयं प्राप्त हुए हैं, इसलिए कहते हैं—तू प्राप्त करेगा ही और तू प्राप्त करने के योग्य ही है! आहाहा! अभव्य जीव की तरह नहीं! नित्य निगोद के जीव भी अभव्य जीव की तरह नहीं, प्रभु! तब फिर तू तो यहाँ पंचेन्द्रियरूप से जैनवाणी सुनने के लिये आया। आहाहा! (अब) अल्प काल में परिणमित होगा। यह जैसी जितनी प्रभुता पड़ी है जो सत्व में प्रभुता है, वैसी ही पर्याय में सत्व प्रभुता प्रगट हो जायेगी—ऐसा लायक तू है। आहाहा! विश्वास कहाँ से लाना? कहते हैं। इसका विश्वास (आना चाहिए)। विश्वास से जहाज चलते हैं, वैसे चैतन्य के ऐसे विश्वास से उसकी परिणति पूर्ण हो जाती है। आहाहा!

भाषा देखी? नित्य निगोद के जीव भी अभव्य की तरह नहीं हैं। यह प्रभु क्या कहते हैं? आहा! नित्यनिगोद के जीव ऐसे नहीं हैं। आहाहा! तो प्रभु! तू तो मनुष्य हुआ और यह परमात्मा की वाणी सुनने के लिये आया, सुनता है, परिणमित होने के योग्य ही है। सन्देह न कर। आहाहा!

मुमुक्षु : आज का (आपका) सम्बोधन बहुत मीठा लगता है!

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसी बात मुनि स्वयं कहते हैं। नित्य निगोद के जीव में भी अभव्य तो पड़े हैं परन्तु फिर भी अभव्य के योग्य वह परिणमन नहीं है, ऐसा तो हम इनकार करते हैं। आहाहा! उसमें भी ऐसे जीव हैं कि केवलज्ञानरूप से परिणम जायेंगे। भले वहाँ से निकलकर (परिणमेंगे)। और तू तो निकलकर बाहर आया है, आहाहा! और कान में परमात्मा की वाणी पड़ती है। यह तीन लोक के नाथ की वाणी है। आहा! आहाहा!

यह अन्तर क्या किया कि नित्यनिगोद के जीव भी परिणम सकते हैं। अभव्य जीव ऐसे नहीं हैं। गजब बात की है! प्रभु! तुम तो छद्मस्थ मनुष्य हो! पंचम काल-फाल के हम मुनि नहीं। आहाहा! हम तो जो हैं वह हैं। हैं वह हैं, त्रिकाल हैं, वही हम हैं। आहाहा! और

तू भी वह हो सकेगा। विश्वास ला, सन्देह छोड़, नि:सन्देह कर! हम तुझसे कहते हैं कि तू परिणमित हो सकेगा, फिर तुझे नि:सन्देह क्यों नहीं होता!! आहाहा! लालचन्दभाई! आहाहा! क्या सन्तों की वाणी! यह दिगम्बर (के) तीव्र वचनों के कारण रहस्य समझा जा सकता है। आहाहा! फाट... फाट... प्याला अन्दर है। दिगम्बर सन्तों की वाणी, तीर्थंकर की जिनवाणी दिव्यध्वनि है, वह वाणी है। आहाहा!

प्रभु! तू पामररूप से मानता हो तो छोड़ देना। हम भव्य होंगे या नहीं? अरे रे! प्रभु! यह क्या करता है तू? एक ज्ञानमति आर्यिका है न? बहुत प्रसिद्ध है। पच्चीस लाख का जम्बूद्वीप (बनाया है) बहुत प्रसिद्ध हो गयी है। वह ऐसा कहती है कि हम भव्य हैं या अभव्य? काललब्धि पकी है या नहीं पकी, वह तो सर्वज्ञ जाने। अर र र..! यह समाचार पत्र में आया है। ज्ञानमति है न? बहुत बोलनेवाली है, लोग बहुत इकट्ठे होते हैं। वस्तु की प्रतीति का ठिकाना नहीं होता। आहा! ऐसा वहाँ तक लिखा है कि हम भव्य हैं या अभव्य? काललब्धि पकी है या नहीं पकी, वह तो सर्वज्ञ जाने। अररर र!

यहाँ कहते हैं कि तुझे (काललब्धि और भव्यता) पकी है—ऐसा हम कहते हैं! आहाहा! और दुनिया फिर प्रशंसा करे, चारों अनुयोगों के जानकारी के बोल बोले 'स्याद्वाद अवलोकन' पुस्तक का नाम दिया है। 'स्याद्वाद सूर्य से अलोकित' चार अनयोग का ज्ञान है। ऐसा कहे और ऐसा फिर लिखे कि हम भव्य हैं या अभव्य? यह भगवान जाने। अरे प्रभु! क्या करता है तू यह? आहाहा!

यहाँ मुनिराज तो पुकारते हैं कि नित्य निगोद के जीव भी अभव्य जैसे नहीं हैं, हम ऐसा कहते हैं। आहाहा! अभव्य जीव प्राप्त नहीं कर सकता, वैसे नहीं हैं। नित्य निगोद में ऐसे जीव हैं। ऐसा कहा न इसमें? भाई! आहाहा! गजब काम किया है! आहाहा! रहने दे, आड़ की आड़ छोड़ दे। आड़ रहने दे। पूर्ण प्रभु है, प्रभु! आहाहा! भले कोई रागादि हो परन्तु वह तुझे अवरोधक नहीं है, वह तो ज्ञान के ज्ञेयरूप से विषय हैं। आहाहा!

सर्वविशुद्धज्ञान (अधिकार में) नहीं आता? दीपक, घट-पट को प्रकाशित करता है-ऐसा नहीं; दीपक, दीपक के प्रकाश को-द्विरूपता को प्रकाशित करता है। दीपक, दीपक को प्रकाशित करता है और दीपक घट-पट का ज्ञान (प्रकाश) जो है, उसे (प्रकाशित करता है), ज्ञान अर्थात् प्रकाश, उसे प्रकाशित करता है। इसी प्रकार आत्मा पर

को प्रकाशित नहीं करता। उसकी स्व को और पर को जानने का जो प्रकाश अपना है, उस द्विरूपता को प्रकाशित करता है, पर को नहीं। आहाहा! वाणी तो देखो! दीपक घट-पट को प्रकाशित नहीं करता, दीपक की प्रकाश की द्विरूपता को प्रकाशित करता है। दीपक, दीपक को प्रकाशित करता है और उसका जो स्वरूप है, उसे दीपक प्रकाशित करता है, इसे (घट-पट को नहीं)।

इसी प्रकार भगवान आत्मा, पर को जानने में पर को प्रकाशित करता है-ऐसा नहीं है। स्व और पर को प्रकाशित करती द्विरूपता को प्रकाशित करता है। ज्ञान की द्विरूपता को प्रकाशित करता है, पर को नहीं, लोकालोक को नहीं। आहाहा! है न पीछे। आहाहा! प्याला फाट अन्दर से, कहते हैं। भगवान भरा है। उस भगवान भरे हुए को देख! भरा हुआ है, पूर्ण है और पूर्ण हो सकने योग्य है—ऐसा तुझे कहते हैं। सन्देह न कर! आहाहा! वह यही पुकार करते हैं। बैठना तो इसे स्वयं को है न? मुनिराज तो बैठाते हैं, मुनिराज तो कहते हैं। नित्य निगोद में भी, अभव्य जैसे परिणम नहीं सकते, वैसी बात है नहीं। आहाहा! वह तो कोई अल्प (जीव) है। ढेर तो यह पड़े हैं बड़े, जीव के-आत्मा के। परिणमित होने के योग्य हैं, उनके ढेर पड़े हैं। आहाहा! नहीं परिणमने के योग्य ऐसे जीव तो कोई अल्प और अल्प अनन्तवें भाग हैं, उनकी बात रहने दे, उस बात को भूल जा, वे हैं नहीं, तू वह है नहीं, आहाहा! टीका करके गजब किया है! गजब टीका है!!

मुमुक्षु : टीका की भी टीका कैसी है!

पूज्य गुरुदेवश्री : गजब टीका है। **सुदृष्टियों को-अतिआसन्न भव्य जीवों को...** तैयारी है मुक्ति की, तैयारी है मुक्ति की। आहाहा! जिसमें अजंपा जाप नहीं परन्तु जंपा जाप हो गया है। मुक्ति का जाप हो गया है। आहाहा! ऐसे आसन्न भव्य जीव को... आसन्न अर्थात् नजदीक, मुक्ति जिसको नजदीक है, जिसके संसार का अन्त आ गया है। आहाहा! उस बात को लक्ष्य में ले! संसार का अन्त आ गया है, अन्त आया है और मुक्ति की निकटता है—ऐसे **अतिआसन्न भव्य जीवों को यह परमभाव...** यह परमभाव-त्रिकाली परमस्वभाव सत्व **सदा निरंजनपने के कारण...** आहाहा! सदा निरंजनपने के कारण। अंजन-फंजन-मेल उसे है ही नहीं। वह तो निरंजन है। आहाहा!

(यह परम) आलोचना का अधिकार है। आज ऐसी आलोचना कर, ऐसे अन्दर

आलोचना कर (ऐसा) कहते हैं। आहाहा! वह है, ऐसा इस प्रकार से आलोचना और देखने के योग्य ही तू है। सन्देह रहने दे। 'भगवान ने हमें अभव्य देखा होगा तो?' अरे! सुन न! भगवान की प्रतीति हुई उसके भव भगवान ने देखे ही नहीं। यह (संवत्) १९७२ के साल में कहा था। प्रश्न उठा था, बड़ा प्रश्न उठा था। भगवान ने देखे उतने भव होंगे। इसलिए अपन क्या करें? भगवान एक समय का ज्ञान तीन काल-तीन लोक को जानें ऐसी एक ही पर्याय। अनन्त दूसरी पर्याय अलग रही। एक समय की एक पर्याय, एक गुण की एक पर्याय। आहाहा! लोकालोक को जानें अपने पूर्ण द्रव्य, गुण को जानें ऐसी पर्याय की सत्ता का स्वीकार जिसे है उसे भगवान ने देखा इसका सच्चा निर्णय है, उसे इस सत्ता का स्वीकार हुआ, उसे सर्वज्ञ सत्ता मेरी है, उसका स्वीकार हुआ उसे भव नहीं हो सकते, भगवान ने उसके भव नहीं देखे। (संवत्) १९७२ में कहा था। भगवान ने भव नहीं देखे। जिसे भगवान जँचे, भगवान इस जगत में है, एक समय की स्थिति की सत्तावाले और एक समय तीन काल-तीन लोक को जानें ऐसा सत्व इस जगत में है। आहाहा! उसका जिसे स्वीकार है, भगवान ने उसके भव नहीं देखे और एकाध-दो भव हों तो ज्ञेयरूप से हैं, छूटकर ही रहेगा, भगवान ने देखा है ऐसा करके (बात नहीं कर)। वैसे तो ऐसा भी कहा न? 'जो जो देखी वीतराग ने सो सो होसि वीरा' परन्तु किसे? जिसे भगवान की प्रतीति हुई है उसे। जो जो वीतराग ने देखी... 'जो जो देखी वीतराग ने सो सो होसि वीरा' परन्तु वीतराग जगत में हैं, उन्होंने देखा (यह) प्रश्न बाद में। वीतराग का अस्तित्व जगत में है। एक समय का, वीतराग का अस्तित्व! आहाहा! पूर्ण वीतरागता जगत में है, एक समय की पर्याय पूर्ण है ऐसी सत्ता का जिसे स्वीकार है उसे भगवान ने भव देखे नहीं, भगवान को उसका भगवान होना दिखा है, वह तो अल्प काल में भगवान होनेवाला ही है। आहाहा! ऐसी बात है, आहाहा!

आसन्न भव्य जीव को... आहाहा! आसन्न, अतिआसन्न भव्य... भव्य आसन्न और अतिआसन्न। आहाहा! **अतिआसन्न भव्य जीवों को यह परमभाव सदा निरंजनपने के कारण...** आहाहा! यह परमभाव निरंजन है, जिसमें अंजन की गन्ध, राग की गन्ध नहीं, उदय को स्पर्शती नहीं ऐसा जो परम स्वभावभाव परमात्मा पड़ा है, आहाहा! वह परमात्मा होने के योग्य है, परमात्मा होने के योग्य नहीं - यह बात यहाँ सुनने जैसी नहीं है। आहाहा!

ऐसा कहते हैं। इससे श्रीमद् ने कहा न! दिगम्बर के तीव्र वचन, उनके तीव्र वचन... सन्तों के तीव्र वचनों के कारण रहस्य समझा जा सकता है कि ये क्या कहना चाहते हैं अन्दर। ऐसा शब्द है न? श्वेताम्बर की शिथिलता के कारण, विपरीतता के कारण (रस) शिथिल होता गया। यह तो तीव्र वचन का पुकार है।

अतिआसन्न भव्य जीवों को यह परमभाव सदा निरंजनपने के कारण... सदा निरंजनपने, निरंजनपने के कारण **अर्थात् सदा निरंजनपने प्रतिभासित होने के कारण...** निरंजनपना है परन्तु 'है' ऐसा भासित हुए बिना 'है' ऐसा कहाँ से आया? ज्ञान में ज्ञेय भासित हुए बिना 'यह है' यह कहाँ से आया? आहाहा! गजब टीका करते हैं!

पद्मप्रभमलधारिदेव मुनि हैं, आचार्य नहीं हैं। मुनि तो तीर्थंकर होनेवाले हैं-ऐसा आया है। ऐसी ध्वनि लगती है। तीर्थंकर होनेवाले हैं, तीर्थंकर होकर मोक्ष जायेंगे। आहाहा! एक बार यह बताया था। नहीं? सर्वज्ञ की बात आयी, वहाँ सर्वज्ञपना नहीं रखा, तीर्थंकरपना रखा, यह बताया था भाई को। हिम्मतभाई! जहाँ सर्वज्ञ की व्याख्या आयी है, वहाँ सर्वज्ञपना न रखकर तीर्थंकर को रखा है। तीर्थंकर ऐसे सर्व भाववाले हैं, उनकी ध्वनि में, मस्तिष्क में ऐसा आता था कि ये तीर्थंकर होनेवाले हैं। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! वह है न कहीं?

देखो, २१२ कलश। देखो, यह आया। देखा? दृष्टि की बात करते हैं-**जो शुद्धदृष्टिवन्त (सम्यग्दृष्टि) जीव ऐसा समझता है कि परम मुनि को तप में, नियम में, संयम में और सत्चारित्र में सदा आत्मा ऊर्ध्व रहता है (अर्थात् प्रत्येक कार्य में निरन्तर शुद्धात्मद्रव्य ही मुख्य रहता है) तो (ऐसा सिद्ध हुआ कि) राग के नाश के कारण अभिराम ऐसे उस भवभयहर...** सर्वज्ञ नहीं लिया परन्तु **भवभयहर भावि तीर्थाधिनाथ...** है? नहीं तो यहाँ सर्वज्ञ लेना चाहिए। भावि सर्वज्ञ (नहीं कहा) परन्तु तीर्थाधिनाथ सर्वज्ञ लिया है। यह स्वयं की अन्दर की ध्वनि है। है? चन्दुभाई! **अभिराम ऐसे उस भवभयहर...** यहाँ सर्वज्ञ शब्द चाहिए। आहाहा! **भावि तीर्थाधिनाथ को यह साक्षात् सहज-समता अवश्य है।** सर्वज्ञ शब्द प्रयोग न करके भावि तीर्थंकरनाथ शब्द प्रयोग किया है। यह स्वयं की अन्तर की ध्वनि है। आहाहा! दिगम्बर मुनियों की तो बलिहारी है! आहाहा! साक्षात् तीर्थंकर का काम करते हैं। उनकी वाणी और उनके भाव, तीर्थंकर की उपस्थिति बताते हैं। आहाहा!

(यहाँ) कहते हैं कि अतिआसन्न भव्य (जीव) **निरंजनपने के कारण (अर्थात् सदा निरंजनरूप से प्रतिभासित होने के कारण)...** वह भले निरंजन है परन्तु है—ऐसा प्रतिभास (आये) बिना निरंजन है, ऐसा कहाँ से आया ? क्या कहा यह ? भगवान आत्मा निरंजन है, शुद्ध चैतन्यमूर्ति, परन्तु वह भासित हुए बिना, ज्ञान में वह भासित हुए बिना 'यह परम निरंजन है'—ऐसा कहाँ से आया ? भासित हुआ, तब लगा कि यह परम निरंजन है। आहाहा! उसमें भी परम निरंजन नाथ भासित हुआ है। है इतना, ऐसा नहीं। वह परम स्वभाव निरंजन है, ऐसा नहीं; वह है—ऐसा भासित हुआ है, इसलिए है। भासित हुए बिना 'है'—ऐसा इसे कहाँ से आवे ? आहाहा! समझ में आया ?

(सदा निरंजनरूप से प्रतिभासित होने के कारण)... प्रतिभासित हुआ अर्थात् ज्ञान की पर्याय में भासित होने के कारण। आहाहा! **सफल हुआ है...** कि निरंजन है परन्तु प्रतिभासित हुआ है तो वह सफल हुआ है। प्रतिभासित हो नहीं, वहाँ है वह सफल कहाँ हुआ ? क्या कहा ? भगवान सदा निरंजन है परन्तु भासित हुए बिना-ज्ञान में भासित हुए बिना प्रतिभास (हुए बिना) सदा निरंजन है, वह जाने कौन ? जाना किसने ? वह प्रतिभासित हुआ है, उसने जाना है, वह कहता है कि आहा! उसे सदा निरंजन जो भाव प्रतिभासित हुआ है; इसलिए वह निरंजन भाव सफल हुआ है। निरंजन भाव है तो सही, परन्तु आसन्न भव्य जीव को सफल हुआ है। आहाहा! पर्याय में-दृष्टि में भासित हुआ है। इससे वह है, वह भासित हुआ है; इसलिए उसे वह सफल हुआ है। है, वैसा भान हो गया है; है, वैसी प्रतीति और ज्ञान में ज्ञेय आ गया है। पूरा परमात्मा ज्ञान की पर्याय में ख्याल में आया है। पर्याय में द्रव्य आता नहीं, परन्तु प्रतिभास है। है न ? प्रतिभासित हुआ है। पर्याय में पूरा निरंजन निराकार भगवान प्रतिभासित हुआ है; इसलिए वह **सफल हुआ है...** निरंजन सदा है परन्तु प्रतिभासित हुआ, इसलिए सफल हुआ है। प्रतिभासित हुए बिना 'वह है' (ऐसा कहे) तो क्या ? आहाहा! यह ऐसी बात है। आहा!

सदा निरंजनपने के कारण सफल हुआ है। सफल हुआ है, इसलिए उसने अर्थ निकाला 'सदा निरंजनपना है' ऐसा भासित हुआ है, इसलिए सफल हुआ है। समझ में आया ? आहाहा! त्रिलोकनाथ सर्वज्ञस्वभावी प्रभु निरंजन निराकार होने पर भी प्रतिभासित हुआ, तब उसे होना है—ऐसा जँचा; इसलिए उसे सफल हुआ है। प्रतिभासित हुआ है;

इसलिए उसे सफल हुआ है। प्रतिभासित नहीं होता, उसे सफल कहाँ से होगा? आहाहा! जिसके ज्ञान में, पूर्ण स्वरूप है—ऐसा भास हुआ और भान हुआ है, उसे वह सदा निरंजनपना सफल है, उसका फल उसे आया कि सफल है। जिसे वह मानने में आया नहीं, अनुभव में आया नहीं, दृष्टि में आया नहीं, ज्ञेयरूप से ज्ञान में ज्ञात हुआ नहीं, उसे तो सफल नहीं। आहाहा! परन्तु जितना वह ज्ञेय है, उतना ज्ञान में आया है; इसलिए वह सदा निरंजनपना सफल हो गया है। आहाहा! गजब बात की है न!

जिससे, इस परम पंचमभाव द्वारा अति-आसन्नभव्य जीव को निश्चय-परम-आलोचना के भेदरूप से उत्पन्न होनेवाला 'आलुंछन' नाम सिद्ध होता है,... प्रतिभासित हुआ है, इसलिए आलुंछन सिद्ध होता है। आहाहा! ज्ञान में त्रिकाली निरंजन सदा प्रतिभासित हुआ अर्थात् ज्ञान में भासित हुआ है, पर्याय में प्रतिभासित हुआ; है, ऐसा भासित हुआ, प्रतिभास हुआ है; इसलिए वह उसका सफलपना हुआ है। सफलपना हुआ है, इसलिए **परम-आलोचना के भेदरूप से उत्पन्न होनेवाला 'आलुंछन' नाम सिद्ध होता है,...** यह सफलपना हुआ, यही आलुंछन है, यह आलुंछन है। आहाहा! **कारण कि वह परमभाव समस्त कर्मरूपी विषम-विषवृक्ष के विशाल मूल को उखाड़ देने में समर्थ है।** अर्थात् उसमें है नहीं। **परमभाव समस्त कर्मरूपी विषम-विषवृक्ष के विशाल मूल को उखाड़ देने में समर्थ है।** अर्थात् कि उसमें है ही नहीं। सफल हुआ है और उसमें वे हैं ही नहीं; इसलिए उखाड़ डाला है—ऐसा व्यवहारनय से कहने में आता है। विशेष कहेंगे.....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)